तृतीय दृश्य

(बलि की राजसभा। उर्वशी नृत्य करती हुई गा रही है।)

गीत

जीवन वसंत-सा हुआ
कूजन तरु-पुंजों का
हार गले गुंजों का
विरह-शिशिर-कुंजों का
अंत-सा हुआ
निखिल भूमि स्वर्णमयी
अधर-कली चूम नयी
श्याम मधुप, हाय दई!
कंत-सा हुआ
चहक रहा मुग्ध, मधुर
कोयल-सा मेरा उर
कटि-पट उड़ मिलनातुर
वृंत-सा हुआ
जीवन वसंत-सा हुआ

(नृत्य समाप्त होते ही उर्वशी सिर झुकाकर चली जाती है।)

बाणासुर— (खड़ा होकर)

पुष्पित पाटल-द्रुम-से तन में क्षत-वज्रांक अपार लिये
नारिकेल-सा करतल पर मस्तक का जय-उपहार लिये
अपने भर्ता का करते हैं अभिनंदन वे लाखों भक्त
दूर पड़े रण-भूमि-मध्य जो कुछ कहने में निरे अशक्त

बलि—आज उन्हीं का पहले हो अधिकार विजय-अभिनंदन का
असुर-यज्ञ के बीच जिन्होंने काम किया है इंधन का

पहले त्याग, ग्रहण पीछे, जीवन का शाश्वत अटल विधान
बलिदानों से ऊँचे हैं बलि, बलि से ऊँचा है बलिदान

(चर का प्रवेश)

चर—चंद्रचूड़-चर्चित हिमगिरि के संधिस्थल पर उगी नवीन
हरित वनस्पतियों से उनकी चिकनी नयी कोंपलें छीन
नभगंगा में धोकर उनको पूर्णचंद्र-भाजन में डाल
रवि की भग्न किरण चुन जोयी ज्वाला के दे सात उबाल
कामधेनु-पद-पूत धरा पर, कल्पवृक्ष की छाया में
डाल रहे हैं जीवन गुरुवर मृत असुरों की काया में

कालनेमि—(क्षितिज की ओर हाथ उठाकर)

कोटि-कोटि शस्यांकुर से वे मंत्रित जल का पाकर स्पर्श
खड़े हो रहे नभ को छूते मानो मातृ मही का हर्ष
रक्तबीज के शोणितकण से रक्तबीज-से असुर असंख्य
उठते थे ज्यों, त्यों वे देखो पर्वत से उठ रहे सपंख

(शुक्रचार्य का प्रवेश। बलि तथा समस्त सभासद उठकर उनका अभिवादन करते हैं। शुक्राचार्य आशीर्वाद देकर बलि के पार्श्व में एक ऊँचे आसन पर बैठे जाते हैं।)

बलि—गुरुवर! सिवा तुम्हारे किसमें यह सामर्थ्य अघट-सी थी
बनी प्रसूती-भवन भूमि जो अभी प्रकट मरघट-सी थी
फाड़ मृत्यु के जबड़े तुमने जीवन-शिशु को खींच लिया
अभिशापों से दग्ध धरा को श्याम जलद बन सींच दिया
विजय तुम्हारी कृपा, तुम्हींने बली इंद्र से ठान विरोध
लिया हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, विरोचन के वध का प्रतिशोध
मैं तो साधन मात्र तुम्हारा, कठपुतली-सा नाच रहा
जैसे तिनका पवन-वेग से नभ में मार कुलाँच रहा

शुक्राचार्य—निज भुजबल से जयलक्ष्मी का जिसने पाणिग्रहण किया
वहन किया त्रयलोक-राज्य कब उसने मद का वहन किया!

श्री-गर्भित दैत्येंद्र! विनय यह आज तुम्हारे ही अनुरूप
बाढ़ नहीं आती सागर में, बढ़ते ताल, नदी, नद, कूप
जिस छाती ने तिल-तिल जलकर दानव-कुल का देखा नाश
दैत्य वंश के वेणु! देख वह तुम्हें ले रही सुख की साँस
अपने महा तेजबल से ही बने आज असुरेंद्र सुरेंद्र
भाग गये अमरत्व-विलासी, मृगशिशु जैसे देख मृगेंद्र
सप्त तलातल, नाग-असुर-सुरलोक विजित चौदहों भुवन
आज तुम्हारे गुण का करती क्षीरसिंधु-इंदिरा स्तवन
अब राज्याभिषेक-उत्सव हो, शुभ मुहूर्त में देर नहीं
बाल चकोरी-सी सुर-वधुयें नये इंद्र को हेर रहीं

(दुंदुभि-ध्वनि। बसु, अश्विनी कुमार आदि देवता तथा दैत्यगण जयध्वनि के साथ अक्षत और पुष्प छिड़कते हैं। शुक्राचार्य आगे बढ़कर रोली का टीका लगाते हैं।)

शुक्राचार्य—देवों, यक्षों, असुरगण को, सिद्ध, लोकाधिपों को
वेदाज्ञा से निज-निज प्रजाधर्म में लग्न पाके
वर्षादाता कृषि-समय से पूर्व, यज्ञांशभोजी
ब्रह्मा के सौ दिवस तक तू स्वर्ग-साम्राज्य भोगे
बाधायें हों विगत, जग का प्राणप्यारा बने तू
शोकांधों की नयन-मणि-सा, शांति संतापितों की
दैत्यों का अभ्युदयकर्ता, काल द्रोही सुरों का
स्वर्गों की श्री, त्रिभुवन-पिता, सज्जनानंद-दाता

(पुष्प-वृष्टि)

बलि—धृति, क्षमा, तप, सत्य, अहिंसा, दान अदि दस लक्षण ही
चिह्न चक्रवर्ती के सुंदर, छत्र, कुलिश, ध्वज, चँवर नहीं
प्रजा सुखी सोती हो जिसकी सच्चा वही प्रजापति है
लोकेच्छा लोकप, संचालक मात्र महेंद्र महामति है

नारी में सुंदरता को मिलता है जैसे पहला स्थान
वैसे ही पुरुषों में होता सबसे प्रथम वीर का मान
वीर-भोग्य है वसुधा, सुधा, सुधा की आकर नारी भी
वीरों के अग्रणी, बाण! है जननी धन्य तुम्हारी भी

(कालनेमि की ओर मुड़ते हुए)

सुरसेना के काल तुम्हारे बाण गिरे रिपु पर ज्यों गाज
यम के रीते सिंहासन पर बैठो आज बने यमराज
काला शासनदंड मृत्यु का, महिष तुम्हारा वाहन हो
अश्रु-आह पथ-चिह्न, रोग-रथ, किसके घर में राह न हो!
अग्नि, बाढ़, भूकंप, अकालों की प्रलयंकर सैन्य लिये
राज्य-तृषित महदाकांक्षी की अट्टहास-वारुणी पिये
चलो चबाते निखिल सृष्टि को तीखे जबड़ों से दिन रात
कालातीत, महाकालाधिप, दानव-कुल-पालक, हे तात!

(कालनेमि उठकर मुकुट ग्रहण करता है और अपने स्थान पर बैठ जाता है।)

बलि—(मय को लक्ष्य करके)

अब द्वितीय बल में, माया में अद्वितीय हे मय! रणधीर
तरुण वरुण बन सप्त सिंधु का शासन-सूत्र सँभालो, वीर!
सागर की सुनहली तरंगें नयी बहू-सी सकुचाती
मीत तुम्हारे पद-पूजन को देखो बढ़ी चली आतीं
पाँव पकड़ पुर-कन्याओं के खींच न लें जलचर कामी
कोमल शिशुओं को न चुरा लें अंबुधि के तस्कर नामी
तिलोत्तमा, रंभादि अप्सरा प्रति राका निशि, कर शृंगार
रत्नभवन में किया करेंगी साथ तुम्हारे सलिल-विहार

(मय उठकर मुकुट ग्रहण करता है और अपने स्थान पर बैठ जाता है)

(राहु और केतु को संबोधित करते हुए)

देवपंक्ति में बैठ जिन्होंने विश्वमोहिनी के कर से
छल से पिया अमृत निकला था जो मंथित रत्नाकर से
राहु-केतु बन जायँ आज से सूर्य-चन्द्र, बलि की दो आँख
जैसे उड़ते हुए गरुड़ की भीम प्रलय-मेघों-सी पाँख
सप्त नील अश्वों के रथ पर भानु, चंद्र मृग-उर-धारी
ज्ञान-भक्ति से व्योम-हृदय में उगें, छिपें बारी-बारी

(राहु और केतु उठकर राजमुकुट ग्रहण करते हैं और अपने-अपने स्थान पर बैठ जाते हैं।)

(ह्लाद को संबोधित करके)

ह्लाद! प्रज्ज्वलित अग्नि बनो तुम शक्ति-शरीरी, आभापूत
देव, मनुज, मुनि, सिद्ध. असुरगण, सभी तुम्हारी बनें विभूति
सैनिक रण-बाँकुरे तुम्हारे भाले से भीतर धँसकर
ज्वलित अग्निमालाओं से जब पार निकलते थे हँसकर

(सहसा प्रह्लाद का प्रवेश। बलि तथा समस्त दैत्यगण उठकर उनका अभिवादन करते हैं।)

प्रह्लाद—वत्स बलि! मैं तुम्हारा पितामह प्रह्लाद तुम्हें आशीर्वाद देने आया हूँ। आज तुम्हारे सुशासन से भयभीत होकर कलियुग विभीतिक वन में जा छिपा है और तीनों लोकों में सत्ययुग आ गया है। विष्णु-भक्त बने रहकर तुम अनंत काल तक स्वर्ग का राज्य भोगो, यही मेरी कामना है।

(प्रह्लाद का प्रस्थान)

शुक्राचार्य—(खड़े होकर)

विजय अधूरी है परंतु, दानवेंद्र! अभी
सुरगुरु-पद इंद्रत्व के गुरुत्व का
भार्गव को न विस्मृत करेगा वक्र भावी से
जैसे नव वधूत्व-सुख प्रियतम से आठों याम

वंदिता कुमारी को है विस्मृत करा देता शीघ्र
जन्म भर का दासत्व, निखिल जीवन का पाश।
हारे हैं विबुध महाबली शत्रु देख, किंतु
हारे नहीं बुध वे अनंत कल्प काल को।
बैठे तुम, दैत्यराज! स्वर्ग की सभा के बीच
देखा ही करोगे नृत्य मृग-दृगी मेनका का,
तिरते तिलोत्तमा की तिल अँगड़ाई में,
पल्लव-अरुण उर्वशी के मधु-अधरों की
पीते वासंती विभा, गंध-निःस्वास मृदु,
सुनते गंधर्व-वीणा-रागिनी हृदयहारी,
पिक-कंठ विद्याधर-कूजित प्रणय-गीत
और वहाँ देवगण वृद्ध चतुरानन की
सत्यभृता नगरी में घेरे अर्ध चंद्राकार
चंद्र से सुरेंद्र, सुरगुरु को, नक्षत्र-तुल्य
रात-दिन होंगे करते ही जय-मंत्रणा

बाणासुर— क्षमा करें गुरुदेव! क्यों न चतुरानन की
पुरी हम आज ही लें घेर ज्यों समुद्र की
काल-सी भयावनी तरंगें घेर लेतीं द्रुत
मार्ग-भ्रष्ट पोत को भँवर के बीच डालकर।

शुक्राचार्य— वीर तुम, बाण! हो परंतु वीरत्व को भी
बुद्धि सीखनी ही पड़ती है अनुभव से।
बुद्धि बिना वीरता तरी है एक मानो क्षुद्र
बिना पतवार के अकूल जलराशि में।
स्वर्ग से सहस्रों लोक दूर हेम-शिखरों पर
ऋषि-लोक पावन बसा है महाशून्य में,
अंधतम-अर्णव में दीपित नक्षत्र-तुल्य
ज्योति-लघु, जहाँ दिन-रात धूम-कुंज तले

खेलते हैं मृगज अवध्य हरी दूब पर,
गर्भित मृगात्मजायें फाड़े सुविशाल दृग
इंगुदी से चिक्वन शिला के खंड सूँघती-सी
देखतीं निदाघ-क्रीड़ा हरिण-कुमारों की
सालस चबाती दर्भांकुर हविष-पूत।
दैत्य वहाँ शाप-भीत पाँव भी न धरते।
उस ऋषिलोक से भी योजन करोड़ आगे
गोलोक सुंदर है गोकुलाधिपति का
गोपवधुओं के साथ छलिया गोपाल जहाँ
महारास रचता है पूर्णिमा-निशीथ में।
घटस्तनी धेनुओ के दुहने की ध्वनि धन्य
किंवा दुग्धोत्सुक रँभाना श्याम वत्स का
सुन लें जो दानव या स्पर्श मात्र कर लें वे
दुग्धदा-प्रलंब-पद-प्रेरित पवित्र पांशु
नाश निश्चित उनका है नाश निश्चित है
जैसे निर्बलों को तड़पाने से कुटुंब का
किवा किसी पीन-पयोधरा रिपु-बालिका की
छूते ही कौमार्य-मंजूषा आर्य-धर्म का।
आगे धेनुलोक से भी सप्तकोटि योजनों पर
योगियों का लोक है प्रसिद्ध जहाँ तप के
आदि उद्गाता रहते हैं लज्ञ सिद्धों साथ,
योगींद्र वे ध्यान में अलख ब्रह्म-पराज्योति
ज्ञान-चक्षुओं से देखते हैं भावमग्न हो,
पीते जिह्वाग्र से अमृत-बिंदु आठों याम
झरते सदा जो ब्रह्माण्ड के विवर से
ब्रह्म-शक्ति मानो झरती हो सृष्टि-अंक में,
अथवा गलित चंद्रातप हुलासभरी

कुंदकली-नायिका के कुसुम-कपोल पर,
किंवा हो असह्य तेज क्रुद्ध चंद्रशेखर का
झरता विवश अग्नि-मुख में श्रीखंड-सा।
श्वास है अलम् दैत्य-वंश के विनाश-हेतु
उन महातापस मुनींद्रों की प्रभामयी,
भृकुटि का भंग तो अर्वण्य है प्रलय-सा।
ऐसे तपलोक से करोड़ तीस कोस आगे
सप्त भुवनादि नवों खंड महामेदिनी के
लाँघता गया है पथ लम्बा इतिहास-सा
भासमान भास्कर की सत्यलोक-भूमि में।
मध्य में तड़ित-तुल्य उस सत्यलोक के ही
वृद्ध विधि की है पद्मपत्र से रची सभा
नाभि जिस पद्म की अशेष-शेष-शायी के
नाभि-रंध्र से है उठी विद्युत-श्री-उज्ज्वला
काम-शिजिंनी-सी कोमलाभ कवि-कल्पना-सी
सृष्टि-रचना-सी चारु, चित्रमयी वाणी-सी।
कृश-कटि कामिनी की क्षीण देह-यष्टि-सी।
जिसमें हिरण्यमय बने हैं स्तंभ निरालंब
वह हिरण्यगर्भ-गर्भ-जनित जगत्-पिता,
जगत्-विधाता वृद्ध ब्रह्मा का निकेत है।
और वह सत्यलोक कैसा है कहने में
मेरी कवि-कल्पना भी हार-हार जाती है,
स्वर्ग तुलना में उसकी यों लगता है मानो
दीपक दिखाया हो किसी ने दीप्त भानु को।
नीला विधिलोक वह त्याग-तप-पावन है
देवों हतभाग्यों को मिले क्यों वहाँ सांत्वना
प्यासे फिरते जो उर्वशी के अधरामृत के

श्रवणोत्कंठित झंकार चारु नूपुर की
प्रेयसी को अंक में लिटाये बजी वीणा-सी!

बलि— गुरुवर की आज्ञा ही बलि ने एक जानी है
और जानता है वह यह भी, कृपानिधे!
आप अनुकूल यदि देवों की तो बात ही क्या
स्वयं रमानाथ उसे जीत नहीं पायेंगे।

शुक्राचार्य— दानवेंद्र! पूरे करो शत अश्वमेध-यज्ञ
शम-दम-नियम-कठिन व्रत ठानकर।
आत्म-चेतना में महाशक्ति का प्रवाह भरे
मन की समस्त कामनायें होम दोगे जब
यह इंद्रत्व अविरोध तभी होगा।
सौवीं यज्ञ-आहुति पड़ेगी ज्यों ही अग्नि-मध्य
ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र तीनों झुकेंगे वचन-दत्त
रक्षा को तुम्हारी, मान लेंगे देवराज तुम्हें
लोक-साक्ष्य देकर चिरकाल को प्रसन्न हो।

बलि— तथास्तु।
स्वर्ग अंगनाओं के अंगों में न अनंग तिरे तब तक
बलि अपने यज्ञासन से विजयी होकर न फिरे जब तब
रहे एक-वेणी ही विंध्याचली तपों की रक्षा-हेतु
जीवन के भोगों के पहले बँधे अमर जीवन का सेतु

(पटाक्षेप)